मानवाधिकार शिक्षा के दार्शनिक आधारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

*डॉ. प्रमिला दुबे

मानवाधिकार व्यक्ति के वे आधारभूत अधिकार हैं, जिनके बिना व्यक्ति प्रतिष्ठा और स्वतंत्रता नहीं प्राप्त कर सकता है। मानवीय गरिमा तथा अन्य उच्चतर मानव मूल्य इसी पर निर्भर हैं। यह मानव की वृद्धि और विकास के लिए परमावश्यक हैं। शायद इसीलिए समय–समय पर इनके संरक्षण के लिए मेंग्नाकार्टा, बिल ऑफ राइट्स तथा मानव अधिकार घोषणा पत्र जारी हुए लेकिन जनसाधारण के लिए मानवाधिकार आज भी मृगतृष्णा बने हुए हैं। सामान्य जन अज्ञानतावश मानवाधिकार से अपरिचित–सा है, जिससे इनका उल्लंघन प्रतिपल हो रहा है।

भारत के संविधान में भी मानवाधिकार के संवर्द्धन की स्पष्ट घोषणा की गई है। परन्तु आजादी के 60 वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद भी वर्तमान स्थिति आशाप्रद नहीं है। आज समाज में व्याप्त शोषण इतना विकराल रूप ले चुका है कि शिक्षा के देवस्थली कहे जाने वाले विद्यालय भी शोषण से अछूते नहीं हैं। अतः विद्यार्थियों में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता लाना अत्यन्त आवश्यक है।

शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जो मानवाधिकारों की जानकारी सर्वसाधारण तक पहुँचा कर उन्हें इसके प्रति जागरूक कर सकती है। साथ ही लोगों की अभिवृत्तिा में परिवर्तन लाकर मानवाधिकरों के प्रति उनमें गहरी आस्था, समझ, ज्ञान और कौशल विकसित कर सकती है। शिक्षा, सामाजिक और सांस्कृतिक .ष्टिकोण में बदलाव लाकर वैमनस्यता को कम कर सहिष्णुता, समानता और शांतिपूर्ण सह अस्तिव की कार्य प्रणाली में बढ़ावा प्रदान कर सकती है। अतः शिक्षा के उद्देश्यों तथा पाठ्यक्रम में मानवाधिकार को समाहित कर विद्यार्थियों को उनके अधिकारो के प्रति सजग बनाया जा सकता है।

हालांकि 1948 के सार्वभौमिक घोषणा पत्र ने मानवाधिकार शिक्षा को स्थायी स्वरूप प्रदान किया है, परन्तु भारत तथा पश्चिम दोनों के सन्दर्भों में इसका ऐतिहासिक विकास देखा जा सकता है। प्रस्तुत शोध में शोधकर्त्री ने मानवाधिकार शिक्षा के दार्शनिक आधारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया है।

शोध के उद्देश्य :–

प्रस्तुत शोध के निम्न उद्देश्य हैंः–

- मानवाधिकार के पाश्चात्य एवं भारतीय ऐतिहासिक विकास का अध्ययन।
- मानवाधिकार के पाश्चात्य एवं भारतीय दार्शनिक आधारों का अध्ययन।
- मानवाधिकार शिक्षा के पाश्चात्य एवं भारतीय ऐतिहासिक विकास का अध्ययन।
- मानवाधिकार एवं कर्त्तव्य के संदर्भ में प्राथामिक एवं माध्यमिक स्तर की पाठ्य पुस्तकों का विश्लेषण।
- कक्षा आठ के सामाजिक विज्ञान विषय में मानवाधिकार एवं कर्त्तव्य शिक्षा का माड्यूल विकसित करना।
- मानवाधिकार एवं कर्त्तव्य शिक्षा माड्यूल के प्रभाव की सार्थकता ज्ञात करना।

अनुसंधान अभिकल्प :–

शोध विधि :– प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक, ऐतिहासिक, विश्लेषणात्मक और प्रायोगिक विधि को अपनाया गया है।

शोध में प्रयुक्त उपकरण एवं प्रविधि :– प्रत्यात्मक विश्लेषण के अतिरिक्त शोधकर्त्री द्वारा प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर की विभिन्न पाठ्यपुस्तकों के विश्लेषण हेतु अनुसूची का निर्माण किया गया। शोधकर्त्री द्वारा कक्षा आठ के सामाजिक विज्ञान विषय हेतु मानवाधिकार एवं कर्तव्य शिक्षा संबंधी स्वअधिगम माड्यूल का निर्माण किया गया व निष्पत्ति के मापन हेतु स्वनिर्मित परीक्षण का प्रयोग किया गया।

निष्कर्ष :–

1. मानवाधिकार वह सभी अधिकार हैं, जो प्रत्येक मनुष्य को केवल मनुष्य होने के नाते प्राप्त होने चाहिए, जाति, राष्ट्रीयता, लिंग, सामाजिक समूह सदस्यता के आधार पर नहीं। यह अधिकार सम्पूर्ण विश्व में सार्वभौमिक व सार्वकालिक होते हैं तथा विधिक और नैतिक दो प्रकार के होते हैं। कोई व्यक्ति तब तक अपने अधिकारों का उपभोग नहीं कर सकता जब तक कि वह दूसरों के प्रति कर्तव्यों का पालन न करे।
2. ऐतिहासिक .ष्टि से मानवाधिकार का विचार प्रारम्भिक परिवार, समूह, कबीले व्यवस्था तत्पश्चात राष्ट्र के निर्माण के फलस्वरूप प्रस्फुटित हुआ। पाश्चात्य सभ्यता में अधिकारों के प्रति जागरूकता का विकास, सुमेरियन, हम्मूराबी विधि संहिता से विकसित होते हुए विभिन्न समाजों से प्राप्त विशिष्ट अधिकारों के रूप में परिलक्षित होता है। 1215 ईस्वी में नागरिक स्वतंत्रता का प्रथम मेंग्नाकार्टा घोषित हुआ। वेसटफीलिया संधि के द्वारा जनता के समानता के अधिकारों का उद्घोष हुआ। अमेरिका का स्वतंत्र घोषणा पत्र इस दिशा में मील का पत्थर साबित हुआ। फ्रांस के संविधान (1791) में राजा के अधिकारों को सीमित किया गया, साथ ही मानवाधिकारों की पूर्व घोषणा को वैधानिक स्वरूप प्रदान किया गया। 19वीं शताब्दी में राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने घोषणा पत्र में – अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, अभाव से मुक्ति, भय से मुक्ति की बात की। 10 दिसम्बर, 1948 को सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा पत्र द्वारा समस्त मानव को मानवाधिकार प्रदान किये गये। वर्तमान समय में मानवाधिकार के विकास हेतु समय–समय पर विभिन्न प्रकार की संधियों द्वारा विशेष सुरक्षा के अधिकार दिये जा रहे हैं।

भारत में भी मानवाधिकार लम्बे वर्षों से हमारी विरासत और परम्परा में जीवित रहा है और सदैव नैतिकता के व्यापक प्रसंग में इस पर विचार हुआ है। बौद्ध, जैन धर्मकालीन समाज में असामनता व वर्ण भेद को अस्वीकार कर समानता, भ्रातृत्व, प्रेम, मानवता आदि विचारों पर बल दिया गया। प्रथम बार अधिकारों के लिए संघर्ष ब्रिटिश दासता से मुक्ति पाने हेतु 1857 में हुआ और निरन्तर संघर्षरत रहते हुए स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय संविधान में मूलाधिकार और मूलभूत कर्तव्य के रूप में मानवाधिकार घोषणा पत्र को समाहित किया गया। वर्तमान समय में भी भारत में मानवाधिकार प्राप्ति हेतु राष्ट्रीय

*वरिष्ठ व्याख्याता, एस.एस.जी. पारीक शिक्षा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जयपुर

मानवाधिकार आयोग, राज्य मानवाधिकार आयोग और गैर सरकारी संगठन संघर्षरत हैं।

दार्शनिक रूप में मानवाधिकार ''सार्वभौमिक मानवीयता एवं सामुदायिक की सामाजिक विधान'' के रूप में लगभग सभी संस्कृतियों में उभरा है। पाश्चात्य दार्शनिक विचारधाराओं में मानवाधिकार विमर्श का प्रारम्भ प्राकृतिक नियम/कानून से प्रेरित प्राकृतिक अधिकारों एवं प्राचीन यथार्थवाद में परिलक्षित होता है। प्रत्ययवादी विचारकों का मानना है कि अधिकार व्यक्ति के विकास का एक साधन है और मूलाधिकार स्वतंत्रता है। उदारवाद (व्यक्तिवाद) स्वतंत्रता और समानता जैसे मूल्यों को बल देते हुए राज्य का मुख्य कर्तव्य मानव स्वतंत्रता की रक्षा को मानता है साथ ही राज्य के विरूद्ध विद्रोह करने का अधिकार भी प्रजा को देता है। उपयोगितावादी दार्शनिकों ने अधिकारों का दर्जा सिर्फ मानव निर्मित व्यवस्थाओं को ही दिया और निरपेक्ष राज्य के बजाय निरपेक्ष व्यक्ति पर बल दिया। प्रयोगवादी और प्रत्यक्षवादी दार्शनिकों ने मानवाधिकार की व्याख्या करते हुए कर्तव्यों पर बल दिया है, वहीं मार्क्स की साम्यवादी विचारधारा ने सामाजिक न्याय पर बल, साम्प्रदायिकता व शोषण का विरोध किया।

मार्क्स ने क्रान्तिकारी मानववाद का सृजन किया जिसमें वंचितों के मानवाधिकार का आह्वान था। उनके अनुसार समाज से विलग व्यक्ति के व्यक्तिगत अधिकार तो हो सकते हैं, सामाजिक एंव मानवीय अधिकार नहीं। अस्तिववाद भी मनुष्य को मानते हुए मानव अस्तिव कायम रखने हेतु अधिकारों पर बल देता है। वहीं मानववादी विचारधारा ने मानव मात्र की समस्या को केन्द्र बिन्दु मानते हुए मानव कल्याण, स्वतंत्रता, सामाजिक समानता, न्याय, आदर भाव, विश्वबन्धुत्व की भावना का समर्थन किया। वर्तमान समय में भी नव उदारवाद एंव नव मार्क्सवाद आदि विचारधारायें मानवाधिकारों के संघर्ष व संरक्षण के विचारों पर बल दे रही है।

भारतीय चिन्तन में मानवाधिकार सदैव से ही रहा है। इसका दृष्टिकोण विधेयात्मक न होकर सकारात्मक था। प्राचीन भारतीय चिन्तन आध्यात्मिकता पर आधारित था तथा ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' अर्थात् ''सम्पूर्ण विश्व एक कुटुम्ब है'' संबंधी मानवाधिकार विचारधारा भारतीय वांगमय में समाहित थी। यहाँ पर मानवाधिकार की प्रकृति सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक है और यह सम्पूर्ण रचनात्मक संस्कृति है। प्राचीन चिन्तन में धर्म शब्द का उल्लेख है। धर्म का क्षेत्र दण्ड, न्याय और कर्तव्य है तथा इसमें मानवाधिकारों का सम्पोषण एवं विकास के तथ्य अन्तर्निहित हैं। उपनिषद्, श्रीमद्भागवद्गीता, बौद्ध, जैन, वेदान्त दर्शन सभी कर्तव्य पालन पर बल देते हुए अधिकार प्राप्ति का विचार रखते हैं।

मध्यकालीन चिन्तन में दो प्रकार की दार्शनिक विचारधारा मिलती है; प्रथम इस्लाम धर्म, जो अधिकार और कर्तव्यों की समुचित व्यवस्था करता है और दूसरी संतमत धारा जिसे नव्य वेदान्त कहा गया। इस चिन्तन धारा ने सम्पूर्ण समाज में सामाजिक समानता, न्याय, भ्रातृत्व, समरसता लाने हेतु त्तकालीन कुरीतियों का विरोध कर समाज को व्यावहारिक रूप से दिशा प्रदान की। इसके पश्चात धार्मिक सांस्कृतिक संकट भारतीय दर्शन में उत्पन्न होता है और इससे मुक्ति हेतु 19वीं शताब्दी में पुनः सार्वभौम मानवतावाद का चिन्तन का अभ्युदय हुआ और इस काल में विभिन्न समाजसुधारकों ने मानवाधिकार प्राप्ति हेतु चिन्तन और व्यावहारिक कर्म पर बल दिया। इसकी पृष्ठभूमि प्राचीन भारतीय दर्शन पर ही आधरित थी।

भारतीय और पाश्चात्य दोनों सन्दर्भों में मानवाधिकार शिक्षा का विकास पृथक रूप से हुआ है। पाश्चात्य सभ्यता में अधिकारों की जागरूकता के लिए सेमेटिक सभ्यता के दौर हम्मूराबी विधि संहिता को जनसामान्य हेतु बीच चौराहे पर लगाया गया, वहीं आगे चलकर इसे मध्ययुग में मानवतावादी विचारक सेन्ट टामस एक्वीनस ने पुष्ट किया।

पुनर्जागरण काल के विचारकों ने मानव जीवन को सार्थक बनाते हुए ''मानव ही सर्वश्रेष्ठ है'' आस्था पर बल दिया। रूसो, फ्रोबेल, पोस्टालॉजी और 19वीं शताब्दी में कार्लमार्क्स ने मानवाधिकार शिक्षा पर बल दिया साथ ही इसे सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्ष भी प्रदान किया। पालोफ्रेरा ने मानवाधिकार शिक्षण पर बल दिया। 1948 के सार्वभौमिक घोषणा पत्र में मानवाधिकार शिक्षा को स्थायी स्वरूप प्रदान किया गया तथा तेहरान, विएना सम्मेंलनों में इस शिक्षा को सु.ढ़ प्रदान किया है। भारतीय संस्कृति में शिक्षा को विशिष्ट और गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। प्राचीन काल में मानवाधिकार शिक्षा नैतिक रूप से कर्त्तव्य परायणता में परिलक्षित होती रही है। भारतीय शिक्षा का अभ्युदय वैदिक काल से होता है। प्रारम्भिक वैदिक काल में सभी वर्णों की शिक्षा का उल्लेख मिलता है। उत्तर वैदिक काल में व्याप्त कर्मकाण्डता एवं असमानता के फलस्वरूप निम्नवर्ग से शिक्षा का अधिकार छीन लिया गया। मध्यकाल में विदेशी आक्रमणों के कारण शिक्षा में निरन्तर परिवर्तन होते रहे। इस समय उद्भवित इस्लाम धर्म ने चिन्तन के रूप में अधिकार और कर्तव्यों का व्यापक उल्लेख किया, परन्तु व्यावहारिक पक्ष में सार्वजनिक रूप से औपचारिक शिक्षा के अधिकार देने की बात नहीं सोची।

ब्रिटिश काल में दासता से मुक्ति के दौर मिशनरियों और भारतीयों द्वारा भारत की जनता हेतु सभी को समान शिक्षा और अधिकारों और कर्तव्यों की शिक्षा पर बल दिया गया। आधुनिक शिक्षा का विकास दो भागों में होता है– प्रथम स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व गठित आयोगों में कर्तव्यों की शिक्षा के रूप में, द्वितीय स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात गठित विभिन्न आयोगों तथा अन्य संगठनों द्वारा मानवाधिकार शिक्षा के लिए किये गये प्रयासों के रूप में। वर्तमान समय में मानव संसाधन विकास मंत्रालय, एन.सी.ई.आर.टी., भारतीय मानव अधिकार संस्थान इत्यादि मानवाधिकार शिक्षा प्रदान करने हेतु प्रयासरत हैं।

अनुसूची विश्लेषण से यह पाया गया कि प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर के विभिन्न विषयों (सामाजिक विज्ञान, भाषा पुस्तक और नैतिक शिक्षा) की पाठ्य पुस्तकों में अधिकार एवं कर्तव्य पर विशिष्ट रूप से चर्चा नहीं की गई है। आवश्यकता है कि अधिकार और कर्तव्यों की समुचित स्वस्थ जानकारी विद्यार्थियों को देने हेतु पुस्तकें लिखी जायें।

मानवाधिकार शिक्षा संबंधी माड्यूल विद्यार्थियों में अधिकार एवं कर्तव्य शिक्षा के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने में समर्थ है।